National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(65): 322-326
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

मौसम तिवारी
शोध छात्रा,
रमादेवी महिला विश्वविद्यालय,
विद्या विहार, भुवनेश्वर
ओड़िशा-751022

Correspondence:
मौसम तिवारी
शोध छात्रा,
रमादेवी महिला विश्वविद्यालय,
विद्या विहार, भुवनेश्वर
ओड़िशा-751022

हिंदी-ओड़िआ लोकोक्तियों में नारी : तुलनात्मक अध्ययन

मौसम तिवारी

शोध सार : लोक के साहित्य 'लोक साहित्य' की कई शाखाएँ हैं। 'लोकोक्ति साहित्य' भी इसी की एक शाखा है जो अपने भीतर बहुत कुछ छिपाए है। प्रायः सभी भारतीय भाषाओं की अपनी-अपनी समृद्ध लोकोक्ति परंपरा है। हिंदी तथा ओड़िआ इसका अपवाद नहीं हैं। लोक का जितना बड़ा हिस्सा पुरुष है उतना ही बड़ा हिस्सा नारी भी है। प्रस्तुत शोध आलेख हिंदी एवं ओड़िआ दोनों भाषाओं की लोकोक्तियों में नारी की स्थिति का तुलनात्मक विश्लेषण करता है। साथ ही हिंदी भाषी तथा ओड़िआ भाषी समाज में नारी के प्रति समान सामाजिक दृष्टिकोण को सोदाहरण उपस्थापित करने का प्रयास करता है। इन लोकोक्तियों में मिलने वाली नारी से संबंधित सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों पहलुओं पर विचार किया गया है। इसमें शोधार्थी ने तुलनात्मक एवं विवेचनात्मक पद्धति का प्रयोग किया है।
बीज शब्द : लोकोक्ति, नारी, हिंदी भाषा, ओड़िआ भाषा, तुलनात्मक अध्ययन

प्रस्तावना: ईश्वरीय सृष्टि अद्भुत है। इस सृष्टि में सब कुछ समाहित है। सब कुछ से अभिप्राय है, भले बुरे का भेद-भाव किए बिना सभी सूक्ष्मातिसूक्ष्म सकारात्मक और नकारात्मक भाव, वस्तुएँ और पदार्थादि। मनुष्य ईश्वरीय सृष्टि का श्रेष्ठ नमूना है। इन मनुष्यों में मानव और मानवी दोनों सम्मिलित हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि ईश्वर की समस्त रचनाओं पर दोनों का समान अधिकार है। उसी तरह समान कर्तव्य भी है। यह कर्तव्य एक दूसरे के प्रति भी है। तथापि सामाजिक संरचना में दोनों की स्थितियों में पर्याप्त अंतर दृष्टिगोचर होता है। यह अंतर विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तरों पर परिलक्षित होता है, जिसका परीक्षण आवश्यक है। लिखित साहित्य में अंतर ढूंढने का कार्य तो बहुत हुआ है। उसमें विमर्शों की एक सुदीर्घ परंपरा रही है। वहीं मौखिक साहित्य तो बहुत विस्तृत और व्यापक है परंतु आज इसका संकलन कार्य कर लोक साहित्य पर कई शोध कार्य किए जा रहे हैं।

शोध का उद्देश्य: यह शोध आलेख लोक साहित्य की एक विशेष शाखा 'लोकोक्ति साहित्य' की सुदीर्घ परंपरा में नारी की स्थिति की विवेचना करने का और साथ ही नारी एवं पुरुष के प्रति दृष्टिगत अंतर ढूंढने का एक किंचित प्रयास है। इस कार्य की कठिनता का अनुमान ओड़िआ के प्रसिद्ध भाषाविद् गोपाल चन्द्र प्रहराज की उक्ति से लगा पाना संभव है, "एक नई भाषा सीखना आसान है परंतु भाषा के विशिष्ट प्रयोगों या भंगियों या ढंगों (यहाँ लोकोक्तियों के अर्थ में) पर अधिकार प्राप्त कर पाना बहुत कठिन कार्य है।"[1] अतः तुलनात्मक अध्ययन का कार्य और भी चुनौतीपूर्ण हो जाता है।

साहित्यावलोकन: हिंदी एवं ओड़िआ दोनों ही भाषाओं में लोकोक्तियों पर विशेष महत्वपूर्ण कार्य हुए हैं। हिंदी में इस क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण कार्य डॉ. भोलानाथ तिवारी ने 'वृहद हिंदी लोकोक्ति कोश' प्रकाशित कर किया है। ओड़िआ में इस कार्य का श्रेय गोपाल चंद्र प्रहराज को जाता है। उनके संग्रह का शीर्षक है, 'ओड़िआ लौकिक पद या ढगढमालि बचन'। अध्यापक सर्बेश्वर दास का ओड़िआ संग्रह 'प्रबाद व प्रवचन संकलन' में ओड़िआ लोकोक्तियों का वर्गीकरण कर उन्हें विषयानुसार अलग-अलग शीर्षकों के अंतर्गत संग्रहित किया गया है। डॉ. लक्ष्मीधर दास का ओड़िआ 'प्रवचन कोष' अर्थ सहित ओड़िआ लोकोक्तियों का संग्रह है। हिंदी-मराठी, हिंदी-इटालियन, हिंदी-तेलुगु, हिंदी-गुजराती, हिंदी-उर्दू आदि के बीच लोकोक्तियों के तुलनात्मक अध्ययन से संबंधित शोध कार्य हुए हैं जो 'शोधगंगा' पर प्राप्त होते हैं।

बहरहाल हिंदी-ओड़िआ की लोकोक्तियों के तुलनात्मक अध्ययन से संबंधित कोई भी सामग्री शोधार्थी को अभी तक प्राप्त नहीं हुई है।

मुख्य पाठः साहित्य के दो रूप हैं लिखित एवं मौखिक। मौखिक साहित्य, साहित्य का वह रूप है जिसमें सब कुछ मौखिक होता है, जिसमें मनुष्य अपनी समस्त अनुभूतियों को अनायास ही शब्दों में पिरोता चला जाता है और कालांतर में वे शब्द समूह इतने प्रमुख, प्रमाणिक और विशिष्ट हो जाते हैं कि मनुष्य उन्हीं को अपनी बातों के प्रमाण स्वरूप खंडन-मंडन हेतु प्रयोग करने लग जाता है। इस रूप का संबंध लोक से होता है। इसमें कुछ और नहीं अपितु लोक की उक्तियाँ ही होती हैं परंतु ऐसी वैसी नहीं 'कुछ विशिष्ट'। इन्हीं उक्तियों में देखने को मिलता है मानव और मानवी के बीच भारी अंतर। ये लोकोक्तियाँ समाज में स्त्री के प्रति विद्यमान पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण की प्रतिनिधि अभिव्यक्तियाँ हैं। ये पक्षपात के सबसे उन्मुक्त नमूने हैं। बेधड़क धड़ल्ले से समाज में शिक्षित-अशिक्षित सभी वर्गों के जुबान पर विराजती हैं ये लोकोक्तियाँ। इन्हीं में मिलते हैं समाज की पक्षपाती एकतरफ़ा दृष्टि के अनगिनत प्रमाण। ये पक्षपातपूर्ण दृष्टियाँ मुख्यतः नारी के प्रति लक्षित हैं। विशेष बात यह है कि ओड़िआ के विद्वान कृपासिंधु विश्वाल लिखते हैं, "समाज का अंतःस्वर उसके लोक जीवन से ज्ञात होता है। लोकजीवन लोक साहित्य की अपेक्षा रखता है। इसमें लोक संस्कृति के कई चरण देखने को मिलते हैं। इसके माध्यम से लोक की जीवनचर्या की व्यापकता को जाना जा सकता है। सामान्य जनता के सुख-दुख, विश्वास, प्रथा, राजनीति, परंपरा, किम्बदंतियाँ, चाल-चलन और व्यवहार इसमें प्रतिबिंबित होते हैं।"[2] लोकोक्तियाँ चाहे किसी भी भाषा की क्यों न हों अपने समाज का अनुकरण करती ही हैं। इसका मतलब हिंदी भाषी समाज और ओड़िआ भाषी समाज की लोकोक्तियाँ भी इनकी सामाजिक दृष्टि को व्यक्त करती ही होंगी। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य यह विश्लेषित करना है कि इन दोनों भाषाओं की लोकोक्तियों में नारी से संबंधित कैसे विचार समाहित हैं? नारी के प्रति कैसी दृष्टि है? क्या दोनों ही नारी को एक ही दृष्टि से देखते हैं अथवा अलग-अलग? इस लेख में तुलनात्मक तथा विवेचनात्मक पद्धति का अनुसरण करते हुए इन्हीं प्रश्नों का हल ढूंढने का प्रयास किया गया है।

लोकोक्ति को परिभाषित करते हुए डॉ. भोलानाथ तिवारी लिखते हैं, "विभिन्न प्रकार के अनुभवों, पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों एवं कथाओं, प्राकृतिक नियमों और लोकविश्वासों आदि पर आधारित चुटीली, सारगर्भित, सजीव, संक्षिप्त लोकप्रचलित ऐसी उक्तियों को लोकोक्ति कहते हैं, जिनका प्रयोग बात की पुष्टि या विरोध, सीख तथा भविष्य कथन आदि के लिए किया जाता है।"[3] ओड़िआ में इन लोकोक्तियों के लिए 'प्रवचन', 'लोकवाणी' ,'लोकोक्ति', 'ढगढमालि' एवं 'लौकिकपद' आदि शब्दों का प्रयोग होता है। ओड़िआ के विद्वान डॉ. लक्ष्मीधर दास का मानना है कि, "लोकोक्तियों को किसी भाषा के बोलने वाले परंपरागत रूप से प्रयोग करते चले आ रहे हैं। इनमें जीवन का सार्वभौम सत्य और चिरसंचित अनुभव राशि सुरक्षित रहती है। इसलिए इन्हें हमारी पैतृक संपत्ति के रूप में विवेचित किया जाना चाहिए। निस्संदेह कहा जा सकता है कि यदि वेद हमारे मुनि ऋषियों के ज्ञान का महासागर है तो लोकोक्तियों को जनता-जनार्दन का अनुभव अमृत कहा जाएगा। ये वेदों के समान अपौरुषेय हैं।"[4]

हिंदी एवं ओड़िआ दोनों भाषाओं में लोकोक्तियों की समृद्ध परंपरा है। इनमें मनुष्य जीवन के विविध पक्षों का चित्रण मिल जाता है। नारी के जन्म, किशोरावस्था, वैवाहिक-जीवन और वृद्धावस्था आदि सभी अवस्थाओं पर कई लोकोक्तियाँ दोनों भाषाओं में प्रचलित हैं। इनका विवेचन हमारे समक्ष इनके समाज के कई पट खोल देता है।

यदि समाज किसी वस्तु, व्यक्ति या भाव को बुरा कहे तो कदाचित् कोई सामाजिक व्यक्ति उन्हें अपने जीवन में सायास सम्मिलित करने का इच्छुक होगा। हिंदी भाषी समाज के लिए नारी नर्क के द्वार के समान है। उसके जन्म पर कोई बधाई नहीं बजती, न ही कोई शोरशराबा होता है। इसके पीछे काम करती है इस समाज की सोच, जो उनके लोकोक्तियों में सामने आती हैं; 'अधमते अधम अधम अति नारी', 'नारी अति बल होत है अपनो कुल को नास', 'नासे बहुत कुल धिय के नास', 'ललना तो छलना है', 'तिरिया भई जगत केहि केरी', 'पाप के घर तिरिया जाती', 'नारी कुंड नरक का बिरला थामे बाग' आदि। इन लोकोक्तियों से स्पष्ट होता है कि पुत्री-जन्म को लोकमानस में वांछनीय नहीं माना गया। वहीं दूसरी तरफ कुछ लोकोक्तियाँ कहती हैं; 'बेटे से नाम चलता है', 'बेटा घर का देवता है', 'बेटी हो तो तुम्हारी, बेटा हो तो हमारा' और 'कपूत अर्थी में तो कंधा देता है' आदि। इन लोकोक्तियों में पुत्र को धार्मिक एवं पारिवारिक उत्तराधिकार का वाहक माना गया है। इसका अर्थ यह है कि बेटा कपूत भी हो तो चलेगा मगर बेटी नहीं। बेटा ही चाहिए। ओड़िआ भाषियों ने तो बेटी की तुलना 'घी' के साथ करके कई लोकोक्तियाँ बनाई हैं। यथा; 'झिअ तुहें से घिअ, ताकु गंभीर शिकारे थुअ', 'झिअ, घिअ रहिले गंधाए' और 'झिअ घरे रहिले अड़ुआ, घिअ घरे रहिले कड़िआ' आदि। क्रमशः इन लोकोक्तियों के अर्थ कुछ इस प्रकार हैं; 'बेटी नहीं वह घी है, उसे गहरे छींके में रखो', 'बेटी और घी रह जाएँ तो बदबू देती हैं', 'बेटी घर में रह जाए तो समस्या, घी घर में रह जाए तो बेकार' और बड़ी ही सहजता से केवल यह एक लोकोक्ति बता देती है, 'बेटी, घी' (झिअ, घिअ)। ऐसी लोकोक्तियाँ पुत्री के प्रति नकारात्मक सामाजिक दृष्टिकोण को व्यक्त करती हैं। जब किसी को जन्म देकर पाल-पोसकर कहीं और भेज ही देना है तो इससे बेहतर कि बेटा हो। आखिरकार जीते-जी तो तारेगा ही मरने पर भी पार लगाएगा। ओड़िआ में लोकोक्ति है, 'बेटी को बेटा कह देने से क्या दिन कट जाएँगे?' (झिअकु पुअ बोलि कहिले कि दिन सरिब?)। स्त्री के पूरे जीवन के संबंध में जिस प्रकार हिंदी भाषियों का यह मत है कि उसकी बाल्यावस्था पिता पर, युवावस्था पति पर और वृद्धावस्था पुत्र पर आश्रित होती है। ठीक यही बात ओड़िआ की लोकोक्ति भी कहती है, 'स्त्री की तीन दशा, पुरुष की क्षणदशा'। अर्थात स्त्री बाल्यावस्था में पिता की दशा को प्राप्त करती है, युवावस्था में पति की और वृद्धावस्था में पुत्र की दशा को प्राप्त करती है। वहीं पुरुष की क्षण दशा होती है, जो क्षण-क्षण परिवर्तनशील है। हाँ, इन सब में एक सकारात्मक पक्ष यह है कि जहाँ एक ओर दोनों ही भाषाओं में भरपूर

नारी विरोधी लोकोक्तियाँ हैं, वहीं एक-आध लोकोक्ति ऐसी भी मिल जाती हैं जिनमें कुछ पते की बात की गई है। जैसे; हिंदी में 'कपूत से निपुत भले' और 'कपूत बेटे की मौत भली' आदि। ओड़िआ में, 'सुपुत्र के कुल में जन्म लेने पर कुल का उद्धार होता है, गया आदि पिंड-श्राद्ध वही करता है, कुपुत्र जन्म लेकर क्षति ही करता है, पिंड न पाकर पितृओं की अधोगति हो जाती है' (सुपुत्र कुळे जन्मिले कुळ उद्धारइ, गया आदि पितृश्राद्ध हिँ करइ, कुपुत्र जन्मिले कुळ करइ क्षति, पिण्ड न पाइ पितृ जांति अधोगति)। इन में ध्यातव्य यह है कि दोनों भाषाओं की अधिकांश लोकोक्तियों में नारी का नकारात्मक चित्रण मिलता है। वहीं पुरुषों के जो अच्छे-बुरे वर्ग मिलते हैं उनमें उनके बुरे पक्ष पर आनुपातिक रूप से कुछ कम ही विचार किया गया है। हाँ एक लोकोक्ति तो हिंदी-ओड़िआ दोनों में धड़ल्ले से चलती है, 'बेटा एक कुल का बेटी दो कुल की'(हिंदी) और 'दुहिता दोनों कुलों का हित करने वाली, दोनों कुलों का नाश करने वाली'(ओड़िआ- दुहिता दुइ कुळकु हिता, दुइ कुळकु पिता)। एक ओर तो हिंदी में ऐसा मानना है कि 'स्त्री की बुद्धि सिर के पीछे होती है' दूसरी ओर उस पर दो-दो कुलों का भार! हाँ ओड़िआ की लोकोक्ति में अवश्य नारी के पास भार के अच्छे-बुरे दोनों परिणामों का अवसर है। अर्थात वह चाहे तो दोनों कुलों को बसा दे नहीं तो उनका नाश ही कर दे। ऐसी लोकोक्तियाँ कहीं न कहीं पुरुषों के पैतृक परिवार और ससुराल के प्रति जो कर्तव्य निर्वहन की पराकाष्ठा है उस पर प्रहार ही करती हैं, या फिर दूसरा पक्ष यह हो सकता है कि पुरुष का अपने ससुराल के प्रति कोई कर्तव्य ही नहीं! सत्य तो यह है कि स्त्री-पुरुष दोनों का एक दूसरे के परिवार के प्रति कर्तव्य होता है। इन लोकोक्तियों में पारिवारिक उत्तरदायित्वों का केंद्र स्त्री को बनाया गया है।

नारी का यदि जैसे-तैसे जन्म हो भी गया और वह अपने किशोरावस्था तक पहुँच गई। उसके बाद से आजीवन उसके चरित्र का मूल्यांकन होने लगता है। हिंदी में इस विषय पर कई लोकोक्तियाँ द्रष्टव्य हैं; 'बेटी बाप की पगड़ी हमेशा नीचे रखती है', 'अपनी लड़की भली होती तो दूसरा क्यों गाली देता?', 'नारि चरित जलनिधि अवगाहु', 'त्रिया चरित ईस नहीं जाने' आदि। ओड़िआ में इसकी समतुल्य लोकोक्तियाँ हैं; 'स्त्री की माया बाढ़ का पानी, ब्रह्मा भी उसे नहीं जान सकते' (स्तिरिंक माया बढ़िपाणि, ब्रह्मा न पारे ताहा जाणि), 'स्त्रियों पर विश्वास नहीं है बाला, पास में बिठाकर काट देती हैं गला' (स्तिरींकु बिश्वाश नाहिँरे बाळा, पाखरे बसाइ काटंति गळा) और 'स्त्री को मत बोलो अबला, निशा रात्रि में काट देती हैं गला' (स्तिरींकु न बोल अबळा, निशा रातिरे काटि दिअन्ति गळा)। ओड़िआ की लोकोक्तियों में स्त्री-पुरुष संबंध की दृष्टि से नारी की तुलना 'आग' से की गई है। साथ ही पुरुष की तुलना 'जौ' और 'जूट या पटसन' से की गई है, जिनका आग के साथ रहना अस्तित्व नाश का कारण बन सकता है। ये लोकोक्तियाँ कहती हैं, 'जूट की बैरी आग' (झोटकु निआँ बाइ) और 'आग के पास कहाँ जौ रहता है?' (निआँ पाखरे कि जउ रहे?); बात यह हुई चाहे चाकू सेब पर गिरे या सेब चाकू पर दोष तो चाकू का ही है। अर्थात् लड़का लड़की पास आए तो लड़की की ही गलती है। समाज में स्त्री को हर तरह से भोग की वस्तु माना जाता रहा है। इन लोकोक्तियों में प्रायः स्त्री को उपभोग की वस्तु के रूप में देखने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। हिंदी एवं ओड़िआ दोनों में नारी की लज्जा के संबंध में एक समान लोकोक्ति प्रचलित है कि; 'सलज्जा गणिका नष्टा, निर्लज्जा वै कुलांगना'(संस्कृत से आई जिसे हिंदी ने अपना लिया है)। वहीं ओड़िआ में; 'लज्जाहीन गृहिणी मरती हैं और लाजवंती वेश्या' (अलाजुगी घरणी मरे, लाजकुळी माहारी)। जहाँ एक ओर समाज नारी को लज्जाशील होने की सलाह देता है वहीं दूसरी ओर उसके उपभोग के लिए उसके गणिका रूप में उसी लज्जा के त्याग की बात करता है। नारी के प्रति यह रूपवाद ओड़िआ की एक और लोकोक्ति में द्रष्टव्य है; 'कमल के कारण तालाब और रूप के कारण गणिका' (पद्म जोगु पोखरी, रूप जोगु माहारी)। अर्थात जिस तरह तालाब की सुंदरता कमल से है, उसी तरह गणिका की सुंदरता उसके रूप से है, अन्यथा कौन इनको पूछता व आकर्षित होता? बहरहाल जो भी हो हिंदी में अंततः यही कहा गया है, 'औरत छोटी या मोटी विष की बूटी'। ये लोकोक्तियाँ स्त्री के प्रति समाज की रूपकेन्द्रित मानसिकता को स्पष्ट करती हैं।

आरंभ से तो यह ज्ञात है कि बड़ी होकर बेटी को पराये घर जाना है अर्थात अपने ससुराल जिसे परंपरागत रूप से उसका स्थायी निवास माना जाता है। वहाँ उसकी स्थिति का विवेचन आवश्यक है। हिंदी में नारी के वैवाहिक जीवन से संबंधित अनेक लोकोक्तियाँ हैं; 'गाय भोली-भाली खरीदनी चाहिए और बहु सीधी-सादी लानी चाहिए', 'बेटी बैल जहाँ जायं वहीं के रहें', 'कन्या के लिए वर और धरती के लिए बीज मिल ही जाता है' और 'बे ब्याही खाएँ रोटियाँ और ब्याही खाएँ बोटियाँ' आदि। वहीं ओड़िआ की लोकोक्तियाँ कहती हैं, 'ओरी का पानी गिरे चबूतरे पर, बेटी का जन्म है पराए घर' (ओळि पाणि गड़े पिंडा तळकु, झिअ जनम त पर घरकु), 'बेटी देना जिसको भी झुक जाना उसके आगे तभी' (झिअ देइथिब जाहाकु, नइं पड़िथिब ताहाकु), 'बेटी दिखाना ढाँप-ढूँप कर, बहू देखना उघाड़-पुघाड़ कर' (झिअ देखिब गोडेइ पोडेइ, बोहु देखिब आड़ेइ आड़ेइ), 'बेटी के मरने पर दामाद फिर किसका अपना?' (झिअ मले जोइं काहार गोत?)। हिंदी की एक लोकोक्ति कहती है; 'बिन ब्याहे बेटी मरे, ठाढ़े ऊँख बिकाय, बिन मारे मुदई मरे, तीनु काल टर जाए'। अर्थात जिसकी बेटी विवाह से पहले मर जाती है, गन्ने खेत में ही काटने से पहले बिक जाते हैं और बिना मारे दुश्मन की मृत्यु हो जाती है उसके ऊपर से तीनों काल टल गएँ समझो। बेटी के विवाह में खर्चा नहीं करना पड़ा। गन्ने को काटकर घर लाने की जरूरत नहीं पड़ी और दुश्मन के लिए भी कुछ करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। ऐसा व्यक्ति तो हर तरह से सुखी हुआ। ओड़िआ की लोकोक्ति का कहना है; 'बेटी का मरण, कड़वी सब्जी और ऋण का न मिलना पहले दुख फिर सुख' (झिअ मरण, पिता तिअण, नमिळे ऋण आगे दुःख पछे सुख)। अर्थात बेटी मर गई तो विवाह का खर्चा बच गया। उस समय उसके विवाह के लिए कर्ज मांगने पर कर्ज भी नहीं मिला और कड़वी सब्जी खानी पड़ी; क्योंकि अच्छा भोजन नहीं मिला। ये सब पहले दुख तो देते हैं

परंतु बाद में सुखकर कार्य सिद्ध होते हैं। हिंदी भाषी प्रदेशों में मान्यता है कि 'बेटी की डोली पिता के घर से उठती हैं और अर्थी पति के घर से'। उसी तरह ओड़िआ में कहते हैं कि, 'झिअकु जोइं नेले गला, जम नेले गला' अर्थात 'बेटी को दामाद ले जाए या यम बात तो एक ही है'; क्योंकि विवाह के बाद बेटी वापस लौटकर अपनी मर्जी से तो मायके नहीं आ सकती। उस पर ससुरालवालों का ही वश चलता है। मर भी गई तो वहीं से विदा कर दी जाएगी।

बहू को ससुराल वाले सीख देते हैं। उसके लिए हिंदी और ओड़िआ में समान लोकोक्तियाँ मिल जाती हैं। 'बेटी को कहे बहु को सुनावे'(हिंदी) और 'बेटी को मारकर बहू को सिखाते हैं'(ओड़िआ- झिअकु मारि बोहुकु शिखांति)। सामान्यतः ससुराल वाले बहू के पीछे पड़े रहते हैं और तनिक गलती पर खरी खोटी सुनाने लगते हैं। इससे संबंधित ओड़िआ लोकोक्ति है, 'गोड़मुदि आगुआळ, कथे दिकथा कहंति बोउलो, संगे-संगे जगुआळ', जिसका अर्थ है, 'बिछुवा उँगली में आगे की ओर निकल आता है, ओ माँ, तुरंत एक गलती पर कई बातें सुनाते हैं ये पहरेदार(ससुराल वाले)'। हिंदी में बहू पर विचारणीय लोकोक्तियाँ द्रष्टव्य हैं, 'कलयुगी बहू में तनिक नहीं हया, डोली से उतरे करे पिया-पिया'। इन लोकोक्तियों में स्त्री के आचरण पर सामाजिक नियंत्रण की प्रवृत्ति दिखाई देती है, जिसके कारण 'जिमि स्वतंत्र होइ बिगड़हिं नारी' जैसी धारणाओं को भी लोकमानस में स्थान प्राप्त हुआ। दोनों हिंदी और ओड़िआ भाषाओं की लोकोक्तियों में बहू के चरित्र का खूब मूल्यांकन किया गया है परंतु अधिकतर नकारात्मक पक्ष ही सामने रखा गया है।

लोकोक्तियों में उपदेश का गुण होता है। हिंदी की कुछ लोकोक्तियाँ नारी को उपदेशित करती हैं कि, 'नारी धरमु पतिदेव न दूजा', 'मनसा बाचा कर्मना पत्नी के पतिदेव'। इन लोकोक्तियों में वैवाहिक संबंधों में स्त्री के लिए एकतरफा कर्तव्यबोध पर बल दिया गया है। क्या विवाह में दोनों का समान अधिकार व कर्तव्य नहीं है? ओड़िआ में लोकोक्ति है; 'अपना घर अपने लिए मथुरापुरी, अपना पति अपने लिए कृष्ण (कंदर्प) के समान हैं' (जेझा घर ताकु मथुरापुरी, जेझा बर ताकु श्रीकृष्ण (कंदर्प) परि)।

पति यदि पत्नी पर विश्वास करे उसके लिए भी हिंदी की लोकोक्तियाँ कुछ ऐसी सलाह देती हैं; 'लुगाई की माने सीख, दर-दर माँगे भीख', 'शोख लड़की बर की आँख फोड़े' और 'मेहरी जैसा बैरी न मेहरी जैसा मीत'। ओड़िआ में द्रष्टव्य हैं; 'स्त्री नायिका विनश्यंती, नश्यंती, बहुनायकः', 'स्त्री बुद्धि प्रलयंकारी', 'साथ में सोती है, कान खाती है, उसकी बात क्या अन्यथा होती है?' (संगे सुए, काने कहे, ता कथा कि अन्यथा हुए?)। स्त्री पर विश्वास न करने के लिए ये लोकोक्तियाँ काफी आधार प्रदान करती हैं और कहती हैं, 'लुगाई के पेट में बात कहाँ पचे?'(हिंदी) अर्थात न उसकी सलाह लो और न ही उसे कोई मन की बात बताओ। जरूरत पड़ने पर हिंदी की बोली गढ़वाली की लोकोक्ति का सहारा लिया जा सकता है, 'बैल को खेत के किनारे और महिला को अकेले में पीटना चाहिए ताकि वह चूँ भी करें तो कोई सुनने वाला न हो'। ये लोकोक्तियाँ तत्कालीन समाज की कठोर स्त्रीविरोधी मानसिकता का स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

यदि किसी गरीब लड़की का विवाह अच्छे परिवार में हो गया और उसने अच्छा पहन-ओढ़ लिया तो वह भी असह्य है। हिंदी में लोकोक्ति है, 'मायके न मिले ओढ़ना-बिछौना, जनाना के कान में चमकेला सोना'। ओड़िआ में आर्थिक स्थिति को दृष्टि में न रखकर सजने-सँवरने की इच्छा रखने वाली नारी के लिए व्यंग्योक्ति है, 'चावल भले धुला न हो, माड़ लेकिन गाढ़ा हो, पति भले नकारा हो, पर साड़ी जरूर सुंदर हो' (चाउळ पछके अधुआ हेउ पेज बहळिआ, घइता पछके संतिआ हेउ, लुगा हेउ तउंरिआ)। अब पति जैसा भी मिले नारी का भाग्य फूटा ही है। ओड़िआ में लोकोक्ति बताती है; 'टूटा-फूटा घर हट्टा-कट्टा वर, हँसी आती है खीर-खीर, छत का घर बूढ़ा वर, आंसू बहते हैं झरझर' (खंडिआ घर, भेंडिआ बर, हस माडुथाए कर कर, पथर घर बुढ़ा बर लुह बोहुथाए झर झर)। यदि किसी स्त्री का पति आर्थिक व शारीरिक किसी भी तरह कमजोर हो उसके लिए तो प्रसिद्ध है, 'कमजोर की लुगाई गाँव भर की भौजाई'। ऐसी विपरीत लोकोक्तियाँ पुरुष की पत्नी प्राप्ति पर और स्त्रीयों के द्वारा किसी कमजोर स्त्री के पति पर अधिकार जताती हुई हिंदी अथवा ओड़िआ में देखने को नहीं मिलती।

नारी के बारे में हिंदी में कहा जाता है, 'तिरिया के हिए होए मयारू(ममता)'। यह ममता तो समस्त स्त्रियों में होती है परंतु जिस स्त्री की संतान नहीं होती, उसे यह समाज 'बाँझ' कहता है। इनसे संबंधित लोकोक्तियाँ कुछ ऐसे विचार रखती हैं, 'बाँझ की जाने प्रसव की पीड़ा', 'जिस घर बड़े न बूझें दीपक जले न साँझ, वे घर उजड़ जाएँगे जिनकी त्रिया बाँझ', 'बाँझ बंजोटी, शैतान की लंगोटी', 'सरसों फूले फागा में और सांझी फूले सांझ, न फूले न फले जो तिरिया हो बाँझ'। अच्छा यदि किसी की एक ही संतान है वह स्थिति तो और भी बुरी है 'बाँझ अच्छी इकाँज बुरी'। ऐसी माँ को इकलौती संतान की मृत्यु का भय जो लगा रहता है। यह तो माँ की ममता और उसके कारण होने वाली मन की व्याकुल स्थिति को बताती है। सामान्यतः इस समाज में ऐसी स्त्रियों का सुबह-सुबह मुँह भी नहीं देखा जाता जो निसंतान होती हैं। किसी शुभ कार्य में उनका सम्मिलित होना भी वर्जित होता है। अपशकुन का सूचक होता है। ओड़िआ में भी लोकोक्ति है 'बाँझ जिधर जाती है साँझ कर देती है' (बांझ, जुआड़े जाए सिआड़े करे सांझ)। वहीं ओड़िआ की एक लोकोक्ति स्त्री की प्रसव पीड़ा सहने के पश्चात नव-जीवन के प्रति आह्लादित रहने की स्थिति को बताती है, 'दुख भोगने की बात छठिहार तक याद नहीं रह जाती' (दुःख पाइला बेळर कथा उठिआरी बेळकु न थाए)। स्त्री की ममता और मातृत्व का सुन्दर विवेचन इस लोकोक्ति में देखने को मिलता है।

नारी के जीवन में पुरुष और पुरुष के जीवन में नारी एक दूसरे के परिपूरक होते हैं। फिर समाज में पुरुष के बिना एक स्त्री की सत्ता की कल्पना करना इतना कठिन कार्य क्यों है? जहाँ एक ओर विधवा जीवन इतना कठिन है वहाँ विधुर जीवन में विधवाओं की-सी शर्तावली व नियम-कानून क्यों नहीं हैं? प्रश्न यह नहीं कि विधुर भी वैसा क्यों नहीं भोगता। प्रश्न यह है कि विधवा ऐसा क्यों भोगे? हिंदी की लोकोक्तियों से ये स्थिति स्पष्ट होती है, 'रांड के आगे गाली

क्या?', 'रांड, सांड, सीढी, संन्यासी, इनसे बचे तो सेवे कशी', 'विधवा होई के करै सिंगार, ओहि ते सदा रहो हुसियार' और 'रांड का रोना और पुरुरवा का बहना व्यर्थ नहीं जाता' आदि। ओड़िआ में लोकोक्तियाँ कुछ ऐसा व्यक्त करती हैं; 'एक रांड, दो रांड, तीन रांड हों तो काँपे ब्रह्मांड', 'रांड-सभा, भांड-सभा', 'रांड-भांड' और 'रांड को क्या आमिष की चिंता' आदि। क्रमशः इनके मूल रूप हैं, 'एक रांड, दो रांड, तिनि रांड हेले कंपइ ब्रह्मांड', 'रांड-सभा, भांड-सभा', 'रांड-भांड' और 'रांड कु किआँ आइंषर चिंता'। एक और ओड़िआ लोकोक्ति कहती है, 'मूर्ख लड़का, विधवा लड़की, बिना आग के शरीर दहकाते हैं' (मुर्ख पुअ, बिधबा झिअ, बिना निआँ रे दहंति देह)। दोनों विवेच्य भाषाओं की लोकोक्तियों में 'विधवा' शब्द का प्रयोग कम मिलता है। उसके स्थान पर 'रांड' शब्द का अधिकाधिक नकारात्मक अर्थ में प्रयोग कर उसे गाली के समतुल्य बना दिया गया है। यह प्रवृत्ति विधवा के प्रति नकारात्मक सामाजिक दृष्टिकोण को सूचित करती है।

अंततः जब नारी वृद्धावस्था को प्राप्त करती है और जीवन की काम-वासना से विरक्त होने लगती है तो उसको सत्य पथ पर चलता देख हिंदी की लोकोक्तियाँ वक्तव्य प्रस्तुत करती हैं, 'अब सतवंती बनी लूट खायो संसार'। ये अधिकतर वृद्धा वैश्या के तपस्विनी होने पर भी कहा जाता है। ओड़िआ में इसके समतुल्य लोकोक्ति है, 'उम्र थी तो नौ सौ पति थे, बुड्ढी होने पर हरि मंदिर की टीका लगाती है' (बअस बेळे नअश' घइता, बुढ़ि दिने हरिमंदिर चिता)। वृद्धा स्त्री की विलासिता पर व्यंग्य करते हुए ओड़िआ में कहते हैं, 'रूखे बालों पर तेल लगाए, बुढ़िया की मांग भला क्या देखे कोई?' (नुखुरा मुंडरे महण, बुढ़ि सुन्थाणी देखिबु कण?)। वृद्धा जीवन पर समाज की कैसी सोच है यह लोकोक्तियाँ स्पष्ट रूप से बतलाती हैं।

विचार करने के उपरांत यही कहा जा सकता है, इन लोकोक्तियों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि लोकमानस में नारी के प्रति सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार की धारणाएँ विद्यमान रही हैं। इसी लोक की इन विशिष्ट उक्तियों को आधार बनाकर लंबे समय से नारी के साथ दुर्व्यवहार होता रहा है। जहाँ एक ओर नारी को खरी-खोटी सुनाने हेतु ये लोकोक्तियाँ प्रमाण प्रस्तुत करती हैं, वहीं दूसरी ओर सौ सुनार की एक लोहार की का अनुकरण करती कुछ समतुल्य लोकोक्तियाँ दोनों भाषाओं में सामने आती हैं जो नारी के सकारात्मक पहलू को उजागर करने का सफल प्रयास करती हैं। हिंदी की लोकोक्ति द्रष्टव्य है; 'नारी नर का नूर है, नारी जग का मान, नारी से नर ऊपजें, ध्रुव प्रह्लाद समान'। ठीक उसी तरह ओड़िआ की लोकोक्ति उदाहरणस्वरूप देखिए; 'बिन स्त्री पुरुष को कौन भला गिनता है, स्त्री से ही संसार में जनमते हैं प्राणी' (स्त्री नथिले फुसकु काहिँरे नगणि, स्तिरी लागी संसाररे जनमंति प्राणी) और 'स्त्री ही धर्म है स्त्री ही पुण्यकर्त्री है, स्त्री के लिए ही इस सृष्टि-वन का सृजन विधाता ने किया है' (स्तिरी एवं धर्म तेहु स्तीरी पुण्यदाता, स्तिरी घेनि बनसृष्टि सर्जिला बिधाता)।

निष्कर्ष: उपर्युक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि नारी संबंधी समान विचार दृष्टि हिंदी तथा ओड़िआ दोनों भाषाओं की लोकोक्तियों में देखने को मिलती है। नारी संबंधी विचारों के दोनों भाषाओं की लोकोक्तियों में एक होने के पीछे कई कारण हो सकते हैं। दोनों भाषाओं का अपना-अपना समाज मूलतः भारतीय समाज ही है। अतः भारतीय समाज की सामान्य मनोवृत्तियों का दोनों में समावेश हुआ मिलता है। संस्कृत भाषा का हिंदी-ओड़िआ दोनों भाषाओं पर विशेष प्रभाव भी रहा है। कुछ संस्कृत उपदेश वचनों को हिंदी तथा ओड़िआ में ज्यों-का-त्यों अपना लिया गया है। कुछ को अपनी-अपनी भाषा संरचना तथा समाज के अनुरूप ढाल लिया गया है जिससे दोनों भाषाओं में भाव साम्यता अधिक देखने को मिलती है। भौगोलिक दृष्टि से स्वतंत्र राज्य गठन से पहले तक ओड़िशा और हिंदी भाषी प्रदेश का आपसी सांस्कृतिक आदान-प्रदान भी काफी होता रहा है। अतः दोनों में ऐसी समानता का होना स्वाभाविक ही लगता है। लोकोक्तियों की परंपरा हिंदी तथा ओड़िआ दोनों में बड़ी समृद्ध है अतः उनमें किसी तात्विक समानता अथवा अंतर की खोज करना कठिन कार्य है परंतु दुसाध्य नहीं। इस आलेख में हिंदी तथा ओड़िआ दोनों भाषाओं में नारी संबंधी लोकोक्तियों का विवेचन-विश्लेषण कर उसकी स्थिति का पता लगाने पर यह बात सामने आती है कि नारी के जन्म, उसके अस्तित्व, उसके चरित्र, उसका वैवाहिक-जीवन, उसका वैधव्य एवं उसकी वृद्धावस्था सब पर कमोबेश हिंदी एवं ओड़िआ लोकोक्तियाँ एक से मत रखती हैं। दोनों में प्रतीक भेद भले हों परन्तु भाव की साम्यता अवश्य है जिसे स्पष्ट रूप से रेखांकित किया जा सकता है। जहाँ एक ओर दोनों भाषाओं में बहुताधिक स्त्री विरोधी लोकोक्तियाँ विद्यमान हैं वहीं दूसरी ओर ऐसी लोकोक्तियाँ भी हैं जिनमें स्त्री का उचित मूल्यांकन मिलता है। तुलनात्मक रूप से स्त्री के सकारात्मक मूल्यांकन वाली लोकोक्तियों की संख्या कम दिखाई देती है। इन लोकोक्तियों की उत्पत्ति के पीछे परिवर्तनशील सामाजिक स्थितियाँ ही कारण रही होंगी। इस दिशा में आधुनिक युग में विशेषकर भूमंडलीकरण और वैश्वीकरण के बाद इन लोकोक्तियों में कैसे परिवर्तन आएँ हैं यह एक नवीन शोध का विषय है।

<u>संदर्भ सूची:</u>

1. प्रहराज गोपाल चंद्र (संग्राहक), विश्वाल कृपासिंधु (संपादक), 'ओड़िआ लौकिकपद या ढ़गढ़मालि वचन', प्रकाशक- सत्यनारायण बुक स्टोर, कटक- 002, प्रथम संस्करण- 2019, संपादकीय के पहले पृष्ठ से
2. प्रहराज गोपाल चंद्र (संग्राहक), विश्वाल कृपासिंधु (संपादक), 'ओड़िआ लौकिकपद या ढ़गढ़मालि वचन', प्रकाशक- सत्यनारायण बुक स्टोर, कटक- 002, प्रथम संस्करण- 2019, पृ.09
3. तिवारी डॉ. भोलानाथ (संपादक), वृहत हिंदी लोकोक्ति कोश, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, भूमिका-पृ. 09
4. दास डॉ. लक्ष्मीधर (संकलनकर्ता), प्रवचन कोश, भारत-भारती प्रकाशन, कटक-001, प्रथम संस्करण-2008, भूमिका-पृ.VI